International Journal of Multidisciplinary Education and Research
ISSN: 2455-4588; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.in
Volume 1; Issue 10; December 2016; Page No. 47-53

सल्तनत काल में महिलाओं की स्थिति

डॉ0 मनोरमा सिंह

एम.ए. एवं पी–एच.डी. (इतिहास), प्राचार्य, पं. आर.एस.एस. शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, पहड़िया जिला रीवा, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश

सल्तनतकाल में भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति सदैव से एक समस्या रही है। समय के साथ साथ उनकी दशा मे महान परिवर्तन होते गये। प्राचीन काल मे उनकी दशा ठीक रही परंतु बौद्धकाल से उनकी दशा का पतन आरंभ हुआ जो सल्तनत युग तक निरंतर जारी रहा है। भारत में कम्पूर–तम्पूर के साथ कई तिब्बती यात्री आए जिन्होंने आखों देखी खबर लिखी है। उसमे भारत की तात्कालिक दशा के वर्णन के साथ नारियों की जानकारी भी मिल जाती है।

मनु ने लिखा है कि उन स्त्रियों के लिए जो कि राजकीय सेवा में रत हों, उनकी पदवी और उनके कार्य के महत्तानुसार उसे (राजा को) उनके दैनिक निर्वाह (वेतन) निश्चित करना चाहिए। इस प्रकार संभवतः मनु की दृष्टि में हिन्दू स्त्रियों को समाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। पर तुर्कों के आगमन के बाद उनकी स्थिति में कुछ न कुछ गिरावट अवश्य आ गयी, पर हिन्दू समाज में उनका परम्परागत सम्मान अवश्य बना रहा। अल–बिरुनी ने हिन्दुओं का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "सभी समस्याओं एवं संकटों में वे स्त्रियों से परामर्श लेते हैं।" हिन्दू समाज में पर्दा प्रथा संभवतः सर्वमान्य न थी, न ही उसके लिए कोई पृथक परिधान था। ए.एस. अल्तेकर का कथन है कि "पूर्व मुस्लिम काल में भी समाज में एक ऐसा वर्ग था जो राजकीय स्त्रियों का परदा व्यवहार करने का समर्थन करता था ताकि उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि हो। हिन्दू समाज का सामान्य वर्ग पर्दे से बाहर प्रतीत होता है। इस वर्ग की स्त्रियां जब किसी अजनबी को देखती थी तब अपने शीश वस्त्र को मुख की ओर खींच घूंघट कर लेती थी। मुसलमानों की कुदृष्टि से बचने के लिए हिन्दू स्त्रियों में धीरे–धीरे लम्बे घूंघट की प्रथा बढ़ी।

मूल शब्दः सल्तनल काल, महिला, भारतीय समाज।

प्रस्तावना

हमारी संस्कृति उतनी ही प्राचीन है जितना मानवता का इतिहास। संस्कृति की वाहिका के रूप मे भारतीय सभ्य समाज मे नारी का स्थान प्रारंभ से ही उच्च रहा है। समाज मे नर–नारी को एक साथ दंपत्ति के रूप मे किसी पारिवारिक समारोह मे भाग लेने पर जो सम्मान दिया जाता है। वह अकेले पुरूश के भाग लेने पर नही मिलता है। इस आदर्श ने श्रद्धा मनु, राधा–कृष्ण, सीता–राम जैसे संबोंधनों को लोकप्रिय बनाया है। इतिहास साक्षी है कि संस्कृति के प्रारंभ से देवत्व रूप मे मातृका पूजन की परंपरा का उदय हुआ। सिंधु सभ्यता के पुरावशेष इसके अकाट्य प्रमाण है। इसी परंपरा मे नारी द्वारा विविध षक्ति के स्त्रोत व विशिष्ट पहचान धारक तत्व विभिन्न आभूषण धारण करने का प्रचलन हुआ जो आज निरंतर जारी है। मौर्य व शुंगकाल मे नारी अलंकरण के क्षेत्र मे अद्भुत प्रयोग किए गए जो उस युग की उपलब्ध टेराकोटा प्रतिकृतियों में देखने को मिलती है। नारी व्यक्तित्व के सर्वप्रथम शिल्पांकन का श्रेष्ठ नमूना ई. पू. 2500 निर्मित कांसे की मोहन जोदड़ो से प्राप्त नर्तकी में देखने को मिलता है।

सुसंगठित राज्य प्रशासन व सामाजिक संगठन के विकास मे शासिका से लगाकर सेनापति, गणिका, सामान्य सेविका के रूप में राज दरबार से लेकर गांव तक चाहे यज्ञ हो या युद्ध व्यापार व्यवसाय हो या खेती बाड़ी हर समय हर क्षेत्र नर के साथ कंधे से कंधा मिलाकर नारी ने समाज को विकासोन्मुख किया है। अपने दायित्व के निर्वाह मे समय की मांग के अनुसार भारतीय नारी ने समाज को विकासोन्मुख किया है। अपने दायित्व के निर्वाह मे समय की मांग के अनुसार भारतीय नारी मोम की तरह मुलायम व वज्र की तरह कठोर भूमिकाएं निभाने मे कदापि हिचकिचाती नही हैं। भारतीय संस्कृति, सभ्यता व इतिहास के विविध स्त्रोत उत्खनन, शास्त्र, मृदा, अभिलेख शास्त्र, मुद्रिका शास्त्र चित्रकला संगीत व नृत्यकला के विविध साक्ष्य नारी योगदान के अकाट्य प्रमाण है।[1]

अनादिकाल में सामाजिक व्यवस्था मे स्त्रियों व पुरूषों का स्थान समान व आदरपूर्ण था। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों मे व विशिष्ट कार्यो के कारण स्त्रियों का आदर किया जाता था। स्त्रियों के कारण किसी भी समाज की उन्नति का मापदंड है। प्राचीनकाल की महिलाओं ने संकट के समय अपने पतियों को परामर्श द्वारा सहयोग किया। यहां तक कि देश की रक्षा व कुटुंब की मर्यादा के लिए उन्होने हथियार तक उठा लिए। ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते है, जबकि विधवा रानियों ने कुशलतापूर्वक राजकार्य भी किया पूर्व मध्यकालीन भारत मे सम्राट हर्ष के समय उनकी बहन राजश्री ने पति की मृत्यु के बाद कुशलता से राजकार्य संभाला। राजपूतकाल मे भी राजवंश की कन्याओं को शासकीय शिक्षा प्रदान की जाती थी। राजदरबार मे भी स्त्रियां भाग लेती थी। यही नही राजमहल मे यह दासी प्रतिहारी एवं रक्षक के रूप मे कार्य करती थी। राजमहल का रसोईघर व मदिरालय भी अधिकतर स्त्रियां ही वयवस्थित करती थी। विभिन्न उत्सवों व त्यौहारों पर भी वे नाच गान मे भाग लेती थी। प्रायः उनसे गुप्तचर व विषकन्याओं का काम लिया जाता था। विद्याध्यन के क्षेत्र मे भी स्त्रियां पीछे नही थी।

उस समय स्त्रियों के आर्थिक अधिकार सुरक्षित थे। उन्हें घर परिवार की संपत्ति मे हिस्सा दिया जाता था। कई प्रकार के राजकीय कार्यो से उनकी आय उच्च व सम्मानित थी। घर परिवार मे अर्थव्यवस्था का पूरा दारोमदार स्त्रियों को अधिकार प्राप्त थे।

स्त्रियों की दशाः मध्ययुगीय सामाजिक चर्चा का अध्ययन अधूरा रह जाता है। यदि उस युग की स्त्रियों की स्थिति की चर्चा न की जाय। भारतीय समाज मे प्रारंभ से ही स्त्रियों को पुरूषों पर आश्रित माना जाता था। हिन्दू विचारों के अनुसार कौमार्यावस्था मे पिता उसका संरक्षक होता था। यौवनावस्था मे पति व वैधव्य मे पुत्र। यदि उसका विवाह समृद्ध परिवार में नही होता था, तो उसे आजीवन शारीरिक श्रम करके अपना व अपने परिवार का पालन पोषण करना पड़ता था। पारिवारिक जीवन मे पुत्र की माता होने पर उसका स्थान

कुछ सम्मानजनक होता था। परंतु यदि वह पुत्रियों की जननी होती या दुर्भाग्यवश विधवा हो जाना पड़ता तो उसे जीवन की कई यातनाओं का सामना करना पड़ता था।

परंतु जिन परिवारों मे या जातियों मे विवाह तलाक व स्वेच्छा से विवाह करने की प्रथा थी। उस समाज मे स्त्रियों का प्रभाव पारिवारिक जीवन मे महत्वपूर्ण माना जाता था। कृषकों के परिवारों स्त्रियां पति का पूरा साथ देती थी, और ऐसे समाज मे स्त्रियों का सम्मान भी था। उस युग मे कई परिवारों की स्त्रियां पंडित थी। जिनके विचारों का और कृत्यों को आज भी बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से स्मरण किया जाता है। राजपरिवार की महिलाओं मे इस युग मे ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है। जिनमे अनेक कुशल प्रशासन, विदुषी, लेखक तथा चित्रकार थे।

परंतु भारत मे सल्तनत काल में स्त्रियों की दशा बाहरी आक्रमणों के कारण दयनीय हो गई थी पर्दाप्रथा, बहुविवाह तथा वेश्यावृत्ति बढ़ गई थी। स्त्रियों द्वारा चलाए जाने वाले उद्योग धंधे लगभग आधे रह गए थे। उनकी कमाई घर तथा बच्चे के ऊपर व्यय होने लगी। उनका अपना कोई स्वतंत्र बचत खाता नही था, और उसके उपरांत भी यह परिवार द्वारा ही पोषित व संरक्षित होती थी।

मध्ययुग की समाप्ति होते होते तो स्त्रियों की दशा इतनी अधिक खराब हो गई कि अधिकारों के नाम पर उनके पास कुछ भी नही रहा था। हॉ यदि बात राजपरिवारों या उनके संबंधित स्त्रियों की हो तो उसे सामान्य महिलाओं से बेहतर कहा जा सकता है। हस्तलिखित बहियों से हमे यह ज्ञात होता है कि राजपरिवारों की महिलाओं की राजनीतिक सामाजिक स्थिति के साथ आर्थिक अधिकार सुरक्षित थे। बहियों के आधार पर हम देख सकते हैं कि राजपरिवार की महिलाओं द्वारा जनहित मे मंदिर, कुएं, बावड़ी, धर्मशाला आदि का निर्माण स्वयं की इच्छा तथा अर्थ से होता था। उनकी आर्थिक स्थिति व अधिकार स्वर्णाभूषणों के रूप मे सुरक्षित थे, जो आजीवन उनके ही होते थे तथा उन पर उनका नाम तथा पहचान अंकित होती थी। परंतु सामान्य स्त्रियां जो भी कमाती थी वह न तो सुरक्षित था न ही उस पर उनका अधिकार था। पति–पत्नी दोनों ही मिलकर घर गृहस्थी का भार ढोते थे। सामान्य महिलाओं के पास इतने अधिक स्वर्णाभूषण भी नही होते थे। वह अपने आपात काल मे शस्त्र की भांति काम ले पाती। यदि थोड़े बहुत होते भी तो उस पर पति या परिवार का ही हक होता। अतः कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है। स्त्रियों की आर्थिक स्थिति बेहतर नही थी। प्राप्त बहिया 72, 106, 107, से हमे यह ज्ञात होता है कि वहां पर बनाये जाने वाले भवन पर महिलाओं का अधिकार होता था।[2]

सल्तनत कालीन महिलाओं का पहनावा

मध्यकालीन हिन्दू स्त्रियां सामान्तया साड़ी तथा अंगिया पहनती थीं। मलमल या रेशम की साड़ियां जहाँ सम्पन्न वर्ग की स्त्रियां पहनती थीं, वहीं सामान्य वर्ग की स्त्रियां साधारण सूती साड़ी पहनती थीं। अंगिया अर्थात् (धोती) विभिन्न रंग एवं डिजाइनों की होती थी। ये सामान्यतया दो डिजाइनों के होते थे। एक वक्ष मात्र ढंकने वाली चोली, दूसरी वक्ष से कमर तक ढ़कने वाला अंग (अंगिया) उच्चवर्गीय महिलाएँ महीन वस्त्रों की अंगिया पहनती थी। बारबोसा गुजराती महिलाओं के वस्त्रों का उल्लेख इस प्रकार करता है – वे रेषमी चोली पहनती है जिसकी वांह तंग होती है और जो पीठ की ओर नीचे तक कटी होती है। मुस्लिम स्त्रियों में घांघरा अधिक लोकप्रिय था। इसके साथ ओढ़नी का प्रचलन था। इबनतूता ने मालावा की स्त्रियों की वेशभूषा का उल्लेख इस प्रकार किया है– समुद्र तट की सभी स्त्रियाँ सिले हुए कपड़े नहीं, अपितु विनासिले हुए कपड़े (साड़ी) पहनती थीं। इस कपड़े के एक छोर को वे अपन कमर में लपेटती थी, तथा दूसरे छोर से अपने माथे तथा अपनी छातियों को ढंकती थी।

इस काल की मुस्लिम महिलाएँ सलवार या पायजामा (सुथनी) और आधी बाँह वाली कमीज पहनती थी। कुलीनवर्गी मुस्लिम महिलाएँ काढ़े हुए वस्त्र पहनतीं थीं। मुस्लिम महिलाओं में बुर्का का प्रचलन था। हिन्दू महिलाएँ घूंघट करती थीं। सिंध व पंजाब में जहाँ सलवार, कमीज और ओढ़नी का अधिक प्रचलन था, वहीं छोआबा, बिहार, मालवा, गुजरात व दक्षिण में साड़ी (धोती) व चोली का रिवाज स्त्रियों में अधिक था।

मध्यकालीन समाज में सौन्दर्य प्रसाधन और आभूषण

इस काल का समाज बाह्य सौन्दर्य के प्रति आसक्त था। अतः मनुष्य में सौन्दर्य प्रसाधन और आभूषणों के प्रति विशेष ललक थी। स्त्री पुरुष सभी अपना सौन्दर्य अभिव्यक्त करना चाहते थे। इस सौन्दर्य अभिव्यक्ति में सौन्दर्य प्रसाधन और आभूषण अति सहायक थे। इसलिए इनके प्रति यथाषक्ति झुकाव स्वाभाविक था। देखा जाय तो मनुश्य मात्र में सौन्दर्य प्रसाधन व आभूषणों के प्रति एक स्वाभाविक ललक थी, पर इसकी पूर्ति सामान्यतया सम्पन्न वर्ग के लोग ही कर पाते थे।

स्त्रियों में सौन्दर्य प्रसाधन और आभूषण

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां विभिन्न प्रकार के सौन्दर्य–प्रसाधनों को प्रयोग करती थीं। वे अपने श्रृंगार तथा सजावट में तीव्र रुचि रखती थीं। स्त्रियों में सोलहों श्रृंगार का प्रचलन था। उच्च वर्गीय सम्पन्न स्त्रियां अपने केश पर विशेष ध्यान देती थीं। युवतियां अपनी केश राशि की वेणियाँ बनाती थी, उन्हें बाँधती थीं। केश सदैव सुविन्यस्त रहता था। सुगंधित तेलों की मिश्रित सुमधुर सुगन्ध उनकी केश राशि से आती रहती थी। विवाहिता माँग में सिन्दूर भरती थीं। स्त्रियाँ अपने सौन्दर्य वृद्धि के लिए नेत्रों एवं भौहों में शलाका द्वारा सुरमा और अंजन लगाती थी। दांतों व ओठों को रंगने के लिए ताम्बूत खाया करती थीं। वे अपने पैरों व नाखूनों को रंगनें के लिए महावर, आलता लगाती व मेंहदी का प्रयोग करती थी। वे अपने कपोलों के श्रृंगार, मस्तक पर तिलक, आँखों में अंजन के लिए दर्पण का प्रयोग करती थी। उल्लेखनीय है कि सिर से पैर तक शरीर के प्रत्येक अंग को सुसज्जित करना हिन्दू स्त्रियों की इस काल में एक सामान्य परम्परा थी। वे युवावस्था में प्रवेश करने के पूर्व ही सिर से पैर तक आभूषण पहनकर अपना श्रृंगार करती थीं।

इस काल के हिन्दू स्त्रियों के आभूषणों में शीशफूल, माँगटीका, बिन्दी, बाली, कुण्डल, करन फूल, बाला, झुमका, झुमकी, नथ, नथफूल, नथनी, हार, हंसुली, कण्ठी, कण्ठमाला, बाजूबन्द, कंगन, चूड़िया, अंगठियाँ, मुदरियां, मेखला, किंकनी, पाजेब, पायल, नुपूर, घूँघरु, बिछिया आदि थे। समाज में साथ रहती हुई मुस्लिम स्त्रियाँ भी प्रायः यही आभूषण पहना करती थीं। मुल्ला दाऊद ने उनके आभूशणों में कुण्डल, हार, अंगूठियाँ, कंगन, नुपूर, पायल, पैजनिया आदि का उल्लेख किया है। उल्लेखनीय है कि उच्च एवं मध्यम वर्ग की स्त्रियाँ ही अधिक आभूषण पहनती थीं। सम्पन्न वर्ग की महिलाओं में कानों में कुण्डल धारण करने का प्रचलन बड़ा लोकप्रिय था। कुण्डन अनेक प्रकार के होते थे। इसी प्रकार नाक को विभिन्न प्रकार के आभूषणों से अलंकृत किया जाता था। नाक के आभूषणों में नथुनी का प्रचलन मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव का परिणाम था। हमारा पुरातन साहित्य नथुनी (नथिया) से अवगत न था। इस प्रकार सांस्कृतिक मेल मिलाप से इस काल में आभूषणों के प्रकार में अभिवृद्धि हुई थीं।

मुस्लिम समाज में नारी की स्थिति

अरब में इस्लाम का प्रादुर्भाव के समय स्त्रियों की स्थिति गिरी हुई थी। वहाँ स्त्रियों को दासी समझा जाता था। इस्लाम के आगमन के

पूर्व अरब के लोग परिवार में लड़की का जन्म अच्छा नही मानते थे। उसके जन्म लेते ही जमीन में जीवित गाड़ देते थे। लोग अनेक स्त्रियां रखते थे।

पैगम्बर मुहम्मद के प्रादुर्भाव के साथ स्त्रियों की स्थिति सुधरी। उनके उपदेषों से समाज में स्त्रियों की प्रतिश्ठा बढ़ी। उन्होंने स्त्रियों के प्रति अरबों के घृणात्मक व्यवहार की तीव्र निन्दा की। मुहम्मद का कहना था कि पुरुष और स्त्री के बीच कोई भेदभाव नहीं रखना चाहिए। सभी की स्थिति समान है और उनके अधिकार भी समान है। कुरान में स्त्री–पुरुष समानता के आधार पर लड़कियों को सामाजिक व आर्थिक बोझ न समझ कर उनके साथ लड़कों के समान व्यवहार करने का उपदेश दिया गया है। धार्मिक क्षेत्र में भी पुरुषों व स्त्रियों के बीच कोई भेदभाव नहीं रखा गया है। मुहम्मद के चचेरे भाई इब्न अब्बास ने लिखा है कि "यदि किसी के यहाँ लड़की का जन्म हो और वह उसका अनादर न करे और अपने पुत्रों के समान पुत्री का लालन–पालन करे तो खुदा जन्नत में उसे इनाम देगा। मुहम्मद साहब ने दासी स्त्रियों के प्रति भी अच्छे व्यवहार का उल्लेख किया है।

इस्लाम के आने के पूर्व अरबों में बहु विवाह का प्रचलन था। अतः इसे रोकना इस्लाम के लिए संभव न था। इसके अतिरिक्त युद्धों में बहुत से पुरुश मारे गए। अतः विधवा स्त्रियों की संख्या बढ़ी। इसका समाधान बहु विवाह से हुआ। इस्लामी परम्परा में चार विवाह को वैध माना गया है। इस्लाम के अनुसार विवाह एक पवित्र संस्कार था जो समझौते द्वारा सम्पन्न होता था। मुहम्मद की दृष्टि में विवाह आवश्यक है जो पवित्र स्त्री से करना चाहिए। वैवाहिक जीवन को सुखी बनाने के लिए इस्लाम में स्त्री–पुरुष के बीच समझौता होता था। स्त्री की आर्थिक स्थिति को सुरक्षित रखने के लिए पति को 'महरे मिस्ल' के रूप में एक विशेष धन पत्नी को दहेज में दिया जाना अनिवार्य था। मुहम्मद साहब का कहना था कि विवाह पूर्व स्त्री–पुरुष को एक दूसरे को देख लेना चाहिए। इससे दम्पत्ति में प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न होता था। इस्लाम में जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता थी। विवाह से पूर्व स्त्री की रजामन्दी आवश्यक है। चुप रहने पर मौन स्वीकृति मान लेनी चाहिए। मुस्लिम विवाह में दो गवाहों का होना अनिवार्य है। विवाह में स्त्री संरक्षक को उपस्थित होना चाहिए। इमाम अबू हनीफ के अनुसार व्यस्क विधवा या कुंवारी के विवाह को बगैर संरक्षक के भी वैधानिक मानना चाहिए।

सल्तनत काल में नासिरूद्दीन महमूद को छोड़ सभी सुल्तानों की एक से अधिक पत्नियाँ थी। साधारण मुसलमान एक साथ चार पत्नियाँ रख सकते थे। अकबर कहता अवष्य था कि एक पुरुश के लिए एक स्त्री पर्याप्त है। यह मात्र उपदश की बात थी, ऐसा किसी ने नही किया।

स्त्रियों के संबंध में बने इस्लामी नियम लचीले थे। मुहम्मद साहब ने कहा था सभी महिलाएँ व लड़कियाँ ईद के नमाज पर सम्मिलित होंगी। पर ऐसा हुआ नहीं, उन्हें घर की चहारदीवारी में रहने को बाध्य कर दिया गया। उन्हें हरम में रख दिया गया, जहाँ उनकी संख्या हजारों में थीं। दिल्ली सुल्तानों के हरम में स्त्रियों की संख्या अधिक थी। समय के साथ बहुत सी हिन्दू स्त्रियों का विवाह मुसलमानों से हुआ। कभी–कभी मुस्लिम स्त्रियों ने हिन्दू स्त्रियों की तरह जौहर का पालन किया था। तैमूर के भटनेर आक्रमण के समय वहाँ की मुस्लिम स्त्रियों ने जौहर किया था। हम देखते है कि मुस्लिम स्त्रियों को बाहर निकलने पर पूरा प्रतिबन्ध था। फीरोज तुगलुक और सिकन्दर लोदी ने मुस्लिम स्त्रियों को सन्तों की मजारों पर जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था।

महिलाओं के अन्य स्वरूप

उपपत्नियाँ वस्तुतः वे स्त्रियां होती थी जिनको राजा बिना विवाह किये अपने साथ रखता था। अतः वह राजा की रखैल या सेवा में आई हुई स्त्री होती थी। यद्यपि प्रथम दृष्टि से प्रतीत होता है कि स्त्रियों का यह वर्ग विशिष्ट था परन्तु वास्तव में स्त्रियों का वर्ग समाज की आम महिला का प्रतिनिधित्व करता सा नजर आता है। उपपत्नियाँ वस्तुतः समाज के निम्न एवं मध्यमवर्ग की ही स्त्रियां होती थी। मध्यकाल के विभिन्न स्त्रोतों में उपपत्नियों की दशा से सम्बन्धित अनेकानेक वर्णन प्राप्त होते हैं। जिनमें उपपत्नियां बनने से पूर्व लेकर पश्चात् तक एवं उनके सामाजिक सांस्कृतिक तथा राजनैतिक प्रभाव का वर्णन अभिजात वर्ग में ठिकानों में ठाकुर द्वारा बहुविवाह करने पर प्रत्येक विवाह के लिय राजाज्ञा प्राप्त करनी होती थी। संभवतः इसका उद्देश्य सामान्य पद प्रतिष्टा के अन्तर को बनाये रखना था। समाज के अन्य वर्गो में पासवान या रखैल रखने पर कोई प्रतिबन्ध नही था किन्तु साधन सम्पन्न लोग ही अधिकतर उपपत्नी रखते थे।

राजमहल में रहने वाली इन उपपत्नियों या दासियों का पद सोपान निश्चित सा हुआ था इनमें उपपत्नियों के विभिन्न प्रकार के होने की जानकारी प्राप्त होती है यथा पासवान, पड़दायत, ख्वास, बडारण, डावणी, ओलगण, गायण, पातर, वेगणी, सहेली जलुसायत, खालासा आदि।

इसमें पासवान एवं पड़दायत उच्चतम दर्जे की उपपत्नी होती थी। पासवान सबसे अधिक प्रभुत्व वाली उपपत्नी होती थी। यह पदवी राजा द्वारा उसी को दी जाती थी जो राजा को सर्वाधिक प्रिय होती थी इस संदर्भ में जोधपुर महाराजा विजयसिंह के काल में गुलाबराय का उदाहरण उपयुक्त है।

जैसाकि पूर्व वर्णित है कि उपपत्नियां निम्न एवं मध्यम वर्ग की स्त्रियां होती थी परन्तु वह वर्ग विभाजन आर्थिक आधार पर था न कि वर्ण व्यवस्था पर आधारित था। विभिन्न स्त्रोतों में उपपत्नियां बनाने एवं बनने से सम्बन्धित अनेक वर्णन प्राप्त होते हैं जैसे कि किसी सुन्दर स्त्री पर मोहित होकर शासक उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध अपने रनिवास में ले आता था और उपर्युक्त वर्णित पदों में से कोई एक पद देकर उसे उपपत्नी बना लेता था। मोटा राजा उदयसिंह ने जीवा पंवार की पत्नी को उसके पति की हत्या कर फलौदी में उपपत्नी बनाया। इसी प्रकार जोधपुर (मारवाड़) शासक महाराजा तख्तसिंह ने शिवजी गहलोत की बेटी जसोदा को बलात उपपत्नी बनाया। इस प्रकार समाज में किसी सुन्दर स्त्री की स्वतंत्रता उसके परदे में रहने तक ही सीमित थी यह वास्तव में चिन्ताजनक स्थिति थी।

बलात के अतिरिक्त और भी ऐसे कारण थे जिनके रहते एक आम लड़की उपपत्नी बना दी जाती थी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ न होने के कारण पुत्री का विवाह करने में असमर्थ पिता अपनी पुत्री को डोली में विदा कर राजमहल में छोड़ आते। वे उपपत्नी की तरह स्वीकार कर ली जाती थी। इसके अतिरिक्त यह भी उदाहरण मिलते है कि राजा के प्रवास काल में आये विवाह अनुरोध हेतु नारियल एवं डोलों को स्वीकार कर लिया जाता था जिनमें से कई लड़कियां जिनसे राजा विवाह नहीं करता था वे उपपत्नी बना ली जाती थी।

उपपत्नियों का प्रमुख कार्य षासक वर्ग की हर प्रकार की सेवा करना होता था लगभग प्रत्येक रानी की अलग–अलग दासियां होती थी जो संभवतः दहेज में पिता के द्वारा दी गई होती थी। उनकी सुरक्षा का भी पूरा ध्यान रखा जाता था। युद्ध अभियानों एवं अन्य देशाटन के समय प्रमुख उपपत्नियां राजा के साथ जाती थी यद्यपि इसका एक कारण साथ चलने वाली रानियों की सेवा करना था लेकिन राजा की सेवा करना एवं विलासिता के कारण भी इनकी उपस्थिति आवष्यक हो जाती थी। युद्ध अभियानों में साथ जाने वाली उपपत्नियों की स्थिति तब विकट हो जाती थी जब हार का सामना करना पड़ता था। शत्रुदल से उनकी सुरक्षा करना कठिन प्रतीत होता था। ऐसी स्थिति में उनका कत्ल कर दिया जाता था। इतिहास में यदा कदा इस तरह के उदाहरण देखने को मिलते है। महाराजा

जसवंत सिंह के काल में औरंगजेब के भय से उनकी 11 (ग्यारह) पड़दायतीयों को सिवाणा में जलाकर मार दिया गया था। यह मध्यकालीन स्त्री दशा का संभवतः सबसे घृणित स्वरूप था।
राजा की मृत्यु होने पर उपपत्नियों की स्थिति और भी विकट हो जाती थी या तो राजा की मृत देह या प्रतीक के साथ यह जल जाती थी य इनकी हत्या कर दी जाती थी।
राजमहल में इनकी स्थिति का एक अन्य पहलू भी उपस्थित था जो इनकी कुछ संतोषजनक स्थिति को प्रकट करता था। इन पासवान, पड़दायत आदि की संतानों के विवाह की जिम्मेदारी शासक की ही होती थी, जिसे पूरा करना शासक अपना व्यक्तिगत उत्तरदायित्व समझते थे। एक शासक के पासवान के पुत्र या पुत्री का विवाह अन्य राज्य के शासक के पासवान के पुत्र या पुत्री के साथ भी होता था। उपपत्नियों से उत्पन्न संतानों से राजा द्वारा संरक्षण एवं आजीविका प्रदान की जाती थी। राजा के जीवित रहते इनकी मृत्यु पर मृत्युभोज एवं कर्मकाण्ड की व्यवस्था राजा द्वारा करवाई जाती थी।
इसके अतिरिक्त समय–समय पर विभिन्न शासकों पर इनके प्रभाव का वर्णन भी यदा कदा दृष्टिगोचर होते हैं। कभी–कभी तो इनका प्रभाव राजनैतिक निर्णयों में हस्तक्षेप तक बढ़ जाता था। महाराजा विजयसिंह के समय में पासवान गुलाबराय का प्रभाव, जोधपुर के महाराजा गजसिंह के समय अनारा का हस्तक्षेप इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। यद्यपि इस प्रकार के हस्तक्षेप की परिणति इनके पक्ष में कभी नही रही फिर भी उपपत्नियों की स्थिति में व्यक्तिगत योग्यता एवं शासक वर्ग की राजकीय तथा नैतिक दुर्बलता के कारण उतार–चढ़ाव की स्थिति बनना स्वाभाविक था।
मुस्लिम परिवारों में पर्दे की प्रथा बड़ी जटिल थी और इसके लिए अलग परिधान की व्यवस्था थी। हमें समकालीन साहित्य में मुस्लिम स्त्रियों की पर्दा के अनेकों उल्लेख मिलते हैं। मुसलमानों में पर्दा प्रथा का आंकलन इस कथा से लगाया जा सकता है – फखरुद्दीन मुबारक षाह लाहौर के गजनवी शासक बहराम शाह की हिन्दू दास लड़की की मनोरंजक व्यथा का वर्णन इस प्रकार करता है– वह लड़की अस्वस्थ हो गई थी और एक चिकित्सक से उसकी चिकित्सा करानी थी। उस चिकित्सक ने उसकी देह का निरीक्षण करने और उसकी नाड़ी देखने पर जोर दिया। शासक को इसकी सूचना दी गई। शासक इस स्थिति को देखकर अत्यधिक अस्त–व्यस्त हो गया और अनेक संतुष्टिकारक तर्को के पश्चात् उसने इस शर्त पर चिकित्सक द्वारा उस लड़की का मुख और हाथ देखा जाना मान्य किया कि वे उनके सम्मुख अधिक न खोले जायें।

मुस्लिम यात्रियों के वृतांत

मध्य काल मे 8 वीं सदी से ही भारत मे भी कई मुस्लिम यात्री भारत आए। जिनमे अलबरूनी तहकीकात–ए–हिन्द, अलबिलादमरी, सुलेमान, अलमसुद, अमीर खुसरों प्रमुख थे जिन्होंने मध्यकाल की नारियों की दशा पर अपनी लेखनी चलाकर तत्कालीन समाज मे नारी की स्थिति पर अच्छा प्रकाश डाला है।

मुस्लिम स्त्रियों की स्थिति

हिन्दू परिवारों के समान मुस्लिम समाज मे स्त्री पर नियंत्रण नही था। वल तलाक के बाद पुनः विवाह कर सकती थी। पर स्त्री को पुरूश साथियों के साथ रहने एवं घूमने की आज्ञा नही थी। मुसलमानों मे भी लड़की के साथ खेलने वाले साथी या तो लड़किया ही होती थी, या लड़कों मे उसके भाई होते थे। शादी के पश्चात वह अपने पति के साथ रहती थी। पति के घर अन्य सपत्नियारें एवं सदस्यों के कारण आपस मे कलह भी हो जाते थे। स्त्री को सदा दया की दृष्टि से देखा जाता था।
स्त्री रक्त बहाना एक जघन्य अपराध समझा जाता था। पुरूष के ऊपर आश्रित रहने के कारण उसकी दशा शोचनीय थी।
मुस्लिम परिवार मे रक्त समूह मे भी विवाह करने की अनुमति रहती थी। बहन, भाई, भानजी से विवाह निषेध रहता था।

स्त्री शिक्षा

स्त्री शिक्षा वर्ग के आधार पर ही थी। ग्रामीण स्त्रियों का शिक्षित होना कठिन ही था। क्योकि वहां का वातावरण इस प्रकार का नही था। गरीब किसानों की स्त्रियां गृहकार्य के अतिरिक्त बुनाई कढ़ाई इत्यादि के कार्य करती थी।

उच्च वर्ग मे शिक्षा प्रसार

उच्च वर्ग के लोग सभ्य जीवन व्यतीत करते थे, तथा इसी कारण से वहां कला और विज्ञान की उन्नति हुई। इनके यहां स्त्री शिक्षा का भी प्रचार था, क्योंकि इस युग मे अनेक विदुषी महिलाएं हुई। गार्गी ही शंकराचार्य एवं मण्डन मिश्र के शास्त्रार्थ के समय निर्णायक बनी थी।
स्त्रियां नृत्य संगीत एवं चित्रकला मे भी दक्ष थी। मुहम्मद तुगलक का कराजल पर आक्रमण करने का कारण यह भी था। वहां कि स्त्रियां अत्यंत विदुषी व सुंदर थी, और वह उन्हे अधिकार मे करना चाहता था। रजिया सुल्तान के गद्दी पर बैठने से यह सिद्ध होता है कि मुस्लिम वर्ग अपनी लड़कियों को अच्छी शिक्षा देते थे।[3]

उत्तर वैदिक काल

उत्तर वैदिक काल 600 ई.पूर्व से 300 ई.पू. बाद तक माना जाता है। इस काल मे स्त्रियों की स्थिति मे कुछ खास हुआ। यद्यपि महाभारत मे उल्लेख मिलता है। कि स्त्रियों की स्थिति पुरूषों के समान थी। परंतु मनु परंपरा इसी काल मे प्रचलित हुई जिसके अनुसार स्त्रियों को वेदपाठ मे मनाही की गई तथा यज्ञ करने पर प्रतिबंध लगाया गया। पति के परमेश्वर होने की भावना का बीजारोपण हुआ, विधवा विवाह का पूर्ण निषेध हुआ और बाल विवाह का आरंभ हुआ।
गौतमीय धर्मसूत्रों मे इस बात का उल्लेख मिलता है, कि रजोदर्शन से पूर्व ही कन्या का विवाह कर देना चाहिए। बाल विवाह के प्रचलन के कारण स्त्री गृह स्वामिनी एवं पति की सखा होने की आषा नही करती थी। और शिक्षा के अभाव के कारण वह वैदिक पाठ भी नही करती थी। धीरे–धीरे स्त्रियों पर अनेक प्रतिबंध लगा दिये गये और इनसे उनकी स्थिति बहुत निम्न हो गई। लड़की पैदा होना परिवार के लिए अभिशाप माना जाने लगा, परंतु इसके बावजूद स्त्रियों की स्थिति अधिक शोचनीय नही थी।

स्मृतिकाल

तीसरी शताब्दी से 11वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध तक के युग को स्मृत युग कहा जाता है। इस काल मे स्त्रियों की स्थिति मे गिरावट स्पष्ट रूप से दिखाई देने लग गई। स्मृतिकारों एवं सूत्रकारों ने इस प्रकार के नियम बनायें कि स्त्रियों की स्थिति रानी से सेविका और शक्ति के स्थान पर दुर्बलताओं की खान की सी हो गई। इस युग मे पति को देवता माना गया और पति की सेवा करना धर्म बताया गया। स्त्रियां अब अपनी इच्छा से पति चयन नही कर सकती थी, और पति उनके लिए एक साथी न रहकर उनसे ऊपर उच्च स्थिति वाला हो गया। स्मृतिकारों ने निर्देश दिया कि स्त्रियों को किसी भी स्थिति मे स्वतंत्र नही रहने देना चाहिए। स्त्रियों को बाल्यकाल मे पति के संरक्षण मे, युवावस्था मे पति तथा वृद्धावस्था मे अपने बेटे के संरक्षण मे बिताना चाहिए। शिक्षा पर प्रतिबंध सा लग गया। बाल विवाह के जोर विवाह मे कन्या की रूचि का अंत, पुरूष का स्त्री पर पूर्ण नियंत्रण विधवा विवाह की कठोरता सती प्रथा आदि से नारी की

स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। डॉ. रामजी उपाध्याय ने लिखा है कि किसी भी राष्ट्र या समाज के अभ्युदय के लिए स्त्री व पुरूष दोनों के कृतित्व का समान ही महत्व है। भारत ने सामाजिक अभ्युस्थान मे योग देने के लिये नारियों को अवसर प्रदान किया है। वास्तव में यह पुरूष का ही उदार दृष्टिकोण कम से कम भारत मे रहा है, कि उसने नारी कि शक्तियों को विकास और सदुपयोग करने के लिये योजनाएं बनाई और उनकों कार्यान्वित किया।

वैदिक धर्म में नारी की उच्च स्थिति

वैदिक आर्यो के बीच नारी की स्थिति इतनी उच्च थी कि आज 20 वीं षताब्दी मे भी अधिकतम सुसंस्कृत राष्ट्र भी उससे तुलना नही कर सकता है। नारियों मे सीता से लेकर राजगणिका और वेष्या क्रमशः उदात्त या अथम प्रवृत्तियों मे संलग्न रही है। भारतीय साहित्य मे प्रायः इन दो वर्गो की नारियों की चरित्र गाथा पढ़ने को मिलती है। ऋग्वैदिक युग मे भी अन्य देशों की भांति पुत्री की अपेक्षा पुत्र प्राप्ति की कामना की जाती थी। पुत्र अपने पिता का सहायक था, धन जन की रक्षा करता था तथा पूर्वजों को जल तर्पण देता था। पर इसका अर्थ यह कदापि नही था कि पुत्री को हेय अथवा घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। दोनो की दीर्घायु की कामना की जाती थी। पुत्र के अभाव मे पुत्री को समान माना जाता था।

स्त्रियों के पूर्ण स्वतंत्रता

आर्यो ने स्त्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की ओर उनका महत्व बढ़ाया इस युग मे वह पर्दा नही करती थी, तथा पुरूषों के समान सामाजिक कार्यो मे भाग लेती थी। बाल विवाह की प्रथा नही थी। यौवनवस्था के पूर्व शिक्षा ग्रहण करती थी। गृह कार्य, सिलाई–कढ़ाई बुनाई व अनेक प्रकार के व्यंजन बनाती थी। उनकी शिक्षा इन कार्यो के अतिरिक्त नृत्य गायन, संगीत व वाद्य प्रमुख अंग थे। जहां तक शिक्षा का प्रश्न था। डा. पी.एन. प्रभु के कथनानुसार स्त्रियों की स्थिति पुरूषों के समान थी। स्त्रियां वेदों का अध्ययन करती थी, तथा पूर्व मीमांसा मे विशेषज्ञता प्राप्त कर काव्य रचना व नृत्य कला मे भी प्रवीणता प्राप्त कर लेती थी। स्त्रियों को उच्च शिक्षा दी जाती थी। उनकी काव्य रचना भी उच्चकोटि की होती थी। उपनिशद काल मे मेयनी तथा उसकी पुत्री गार्गी ने अलंकार शास्त्र के निर्माण मे सहयोग दिया था। ऋग्वेद मे स्पष्ट वर्णन है कि स्त्रियां वाद्ययंत्र जैसे वीणा तालुका वीना कांदा वीना के साथ गाती व नृत्य करती थी।

मध्यकालीन युग में नारी

मध्य युग से आशय 13 वीं सदी के आरंभ से 17 वीं सदी के अंत तक के समय से है। इस युग मे नारी की प्रथागत तथा वैधानिक स्थिति का अध्ययन निम्न रूप के द्वारा किया जा सकता है : मध्यकाल मे स्त्रियों की प्रथागत तथा वैधायी स्थिति मे और अधिक गिरावट आ गयी। इस काल मे नारी शिक्षा का प्रायः लोप हो गया और नारी परंपराओं मे जकड़ती गई। विवाह की उम्र मे निरंतर गिरवट आती गई। इस युग मे कन्या की उम्र 8–9 वर्ष की होते ही विवाह किये जाने लगे। विधवा पुर्नविवाह प्रतिबंधित हो गये। पर्दा प्रथा शुरू हो गयी सती प्रथा ने और अधिक जोर पकड़ लिया।

इस युग मे बहुपत्नी विवाह आरंभ हो गये क्योकि एक पत्नी के होते दूसरी पत्नी रखना प्रतिष्ठा समझा जाने लगा और विधवा से अपने पुत्र की संरक्षिका होने का अधिकार भी छीन लिया गया। इस काल मे स्त्रियों की स्थिति इस सीमा तक गिर गई कि उसकी स्थिति एक वस्तु (द्रव्य) की सी रह गई जिन्हें पुरूष अपनी इच्छानुसार किसी भी प्रकार के उपयोग में ला सकता था। तलाक प्रथा एवं विवाह विच्छेद ने जोर पकड़ लिया था। यह मध्यकाल का नारी पर प्रभाव था।

इस युग मे मुख्य रूप से स्त्रियों की आर्थिक पराधीनता, कुलीन विवाह, बेमेल विवाह प्रथा, अंतर्जातीय विवाह, बाल विवाह, अशिक्षा और संयुक्त परिवार प्रणाली आदि ऐसे कारण माना गया है जिनसे स्त्रियों की स्थिति मे अत्याधिक गिरावट आ गई। और यह काल सदा के लिए भारतीय संस्कृति मे काला धब्बा बन कर रह गया था।[4]

सती प्रथा

प्राचीन ग्रंथों में सती प्रथा का समर्थन किया गया है और वे इसे शस्त्र सम्मत बताते है। लेकिन यदि गहनता से अध्ययन किया जाए तो प्राचीनतम वैदिक ग्रन्थों में भी सती प्रथा का उल्लेख नही है। इतिहास पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है अपने मृत पति के शव के साथ जलने वाली स्त्री के लिए सती शब्द का प्रयोग हुआ है। इस शब्द का प्रयोग मुगल शवाधानों मे दफनाई गई स्त्री से लेकर पति की चिता पर बलात् या स्वेच्छा से जलने वाली स्त्री के लिए किया गया है। अन्य अर्थो में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

सती शब्द का शाब्दिक अर्थ अमर अथवा सत्य पर स्थिर रहने वाली है जो पति पत्नी का अटूट और अविच्छेद संबंध भी व्यक्त करता है। सती से वास्तविक तात्पर्य है कि वह सात्विक व पतिव्रता स्त्री जो पूरी तरह पति के प्रति समर्पित हों। यह शब्द स्त्री के एक विशेष व्यक्तित्व को दर्शाता है। सती शब्द की अभिव्यक्ति के लिए प्राचीन साहित्य मे अनवारोहण सहमरण (मृत पति के साथ मरना) और अनुमर (यदि पति की मृत्यु विदेश प्रवास काल मे हो गयी हो तो उसका समाचार जानने के बाद उसके पीछे मरना) आदि अनेक शब्द प्रचलित है। रामायण मे इस शब्द का प्रयोग पतिव्रत, साध्वी स्त्री के लिए किया गया है। महाभारत में सती शब्द का प्रयोग एक अच्छी गुणवती और विश्वास पात्र स्त्री के लिए किया गया है। गृहसूत्रों, धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों मे सती शब्द सच्चरित्रा स्त्री के लिए प्रयोग हुआ है मत्स्य पुराण मे सती आदि शक्ति के रूप मे बताया गया है। राजतंरगिणी मे तो सती स्त्रियों के प्रभाव से असाध्य कार्यो के साध्य होने का भी वर्णन किया गया है।

इसका तात्पर्य यह नही कि वह पति की दासी है या उसे पति की अंध भक्ति करनी चाहिए। पत्नी को पति की अर्धागिनी माना गया है। यही कारण है कि उसे भी वे ही सामाजिक धार्मिक एवं अधिकार प्राप्त है जो उसके पति को है। सती पद पाने के लिए यह आवश्यक नही कि वह पति की मृत्युपरांत उसकी चिता के साथ जलकर स्वाहा हो जाए। हिन्दू समाज मे प्राचीन काल की मैत्रेयी, गार्गी, सीता, सावित्री, अनुसुइया आदि को सम्मान की दृष्टि से देखा गया है। इनका व्यक्तित्व अपने गुणों के कारण सतीमय था। जबकि इनकी देह पति की चिता को समर्पित नही हुई। प्राचीन भारतीय साहित्य मे विधवादाह के लिए सती प्रथा शब्द का प्रयोग नही मिलता है।

सती प्रथा नारी के वैधव्य से संबंधित है। इसलिये विधवाओं की स्थिति व अधिकार के पहलू पर दृष्टिपात करना भी प्रासंगिक है। सती प्रथा भारतीय थी या प्राक आर्यन संस्कृति की देन थी यह विवाद का विषय है। स्मिथ इस प्रथा को सीथियन जाति की देन मानते है, जो मध्य एशिया से उत्तर–पश्चिमी मार्ग से भारत मे आयी थी। स्मिथ के इस कथन को स्वीकार नही किया जा सकता, क्योंकि कुछ लोग आर्यो की मूल स्थली मध्य एशिया मानते है। यदि आर्य इस क्षेत्र मे थे तो उन्हें स्वयं ही इस प्रथा की जानकारी होनी चाहिए। विधवा दाह के लिए इस शब्द का प्रयेाग आधुनिक प्रतीत होता है। इसका सर्वप्रथम प्रयोग यूरोप के साहित्य मे 1887 मे सर सी मैलेट एवं सर डब्ल्यू जोन्स के पत्रों मे हुआ है। आदर्श पौराणिक भारतीय नारी के सतीत्व को विधवा के अग्निदाह से जोड़कर सती प्रथा का नाम दे दिया गया। सती प्रथा के शुरूआत के बारे मे विवाद है। सती शब्द का अस्तित्व पौराणिक काल से है। दक्ष प्रजापति के यज्ञ मे उसकी पुत्री सती (शिव की अर्द्धांगिनी) ने अपने पति के अपमान से क्रुद्ध होकर स्वयं को यज्ञकुण्ड मे समर्पित कर

दिया था। सती का यह बलिदान कालांतर मे भारतीय नारियों के लिए अपनी अस्मिता बचाने का उदाहरण बन गया और पति के शव के साथ सहगमन करना सती होना कहलाने लगा। धीरे धीरे इसका स्वरूप भयावह बन गया और यह एक सामाजिक विकृति बन गयी कई विद्वान इस प्रथा को भारतीय नही मानते है। यतीन्द्र विमल चौधरी इस प्रथा का प्रारंभ ईसा की प्रथम शताब्दी के आस–पास मानते है। इस प्रथा की प्राचीनता को ऋग्वैदिक समाज से भी जोड़ने की कोशिश की गई है। साहित्यिक दृष्टि से भारत मे महाभारत काल से विधवाओं का पति के शव के साथ जलने का उल्लेख मिलता है। सैंधव सभ्यता मे सती का पर्याय नही मानते। उस भावना विशेष को सती प्रथा का नाम देने के पक्षधर है जिसमे विधवा स्त्री स्वयं अपने आपको अग्नि मे समर्पित कर देती है। कब्र मे पुरूष के शव के साथ स्त्री को वलात् दफना देना सती प्रथा की कोटि में नही आता है।[5] ऋग्वैदिक काल में भी इसका अस्तित्व नही था। वैदिक काल मे वैधव्य को नारी जीवन का अभिशाप नही माना गया है।

सती प्रथा भारत मे नारी इतिहास का महत्वपूर्ण बिन्दु है। यह प्रथा हिन्दू धर्म रंक से राजा और झोपड़ी से महल तक प्रचलित थी। जिसका विस्तृत अध्ययन इस प्रकार किया जा सकता है।

सती प्रथा की उत्पत्ति

सती प्रथा भारत मे जन्मी या विदेषों की देन है। ब्राम्हण साहित्य 1500 ई.पूर्व से 700 ई.पूर्व तक गृहसूत्र 600 से 300 ई.पू. सती प्रथा का उल्लेख नही करते है। महाकाव्य काल मे सती प्रथा का अस्तित्व था। वेदवती की माता सती हो गई थी।

त्रेतायुग में रावण के पुत्र इंद्रजीत (मेघनाथ) की पत्नी सुलोचना के सती होने का उल्लेख रामायण मे मिलता है।

महाभारत मे उल्लेख आया है कि पाण्डु की पत्नी नकुल सहदेव की माता माद्री सती होने जा रही थी। भारत मे सती प्रथा का सर्वप्रथम ऐतिहासिक प्रमाण कर्टियस की दोनो पत्नियों मे (316 ई.पू.) युद्धभूमि मे मारे जाने पर अपने पति के साथ चिता मे जलने की उत्सुकता जताई जाती है।

यूनानी इतिहासकार स्ट्रेबो का कथन है कि यह प्रथा पंजाब की एक जाति मे बहुत पहले से प्रचलित थी।

स्मृति में सबसे पहले 121 ई. की विष्णू स्मृति को विश्णु धर्म स्मृति भी कहते है। इसमे कहा गया है कि अगर कोई विधवा चाहे तो अपने पति के मार्ग का अनुसरण कर सकती है और वह सती हो सकती है। विष्णु स्मृति मे कोई धार्मिक कारण नही बताया गया है। क्योकि विश्णु स्मृति मे विधवा पुनः विवाह तथा पत्नी को पति का उत्तराधिकारी बताया गया है।

सती प्रथा 4थी शताब्दी मे ज्यादा प्रचलित हो गई वात्सायन का कामसूत्र, शूद्रक तथा कालिदास की कृतियों मे सती प्रथा का उल्लेख मिलता है।

सती प्रथा का विरोध

मनुस्मृति के टीकाकार इसका विरोध करते है। बाणभट्ट इसे मूर्खो की प्रथा कहते है। महानिर्वाण तंत्र भी इस प्रथा का विरोध करते है। 12 वीं शताब्दी ई. का लेखक देवणभट्ट दक्षिण भारत के लेखक मानते है कि सती प्रथा निम्न कोटि का धर्म है और इसे स्वीकारना नही चाहिए। सुलेमान अरब व्यापारी भारत के पष्चिमी तट पर आया था। वह कहता है कि कभी कभी राजा की मृत्यु के बाद उसकी रानियां व दासियां उसकी चिता पर चढ़ जाती थी। किंतु यह करना अपनी इच्छा पर निर्भर था।

सती मूलतः क्षत्रियों की प्रथा थी। उद्धत दैवत मे कहा गया है कि यह प्रथा क्षत्रियों के लिये है। पद्मपुराण के ऋषिखंड मे ब्राम्हण स्त्री को सती होने से मना किया है। 12वीं, 14वीं सदी के टीकाकार याज्ञवलक्य स्मृति के व्याख्याकार माधव ब्राम्हण की सती की बात करते है। राजस्थान में 1000 ई. के उदाहरण मिलते है। ये दोनो चौहान राजाओं के है।

चौहान शासक चण्डमहासेन की पत्नी 842 ई. मे सती हुई थी। 890 मे घटियाला की संपल्ल देवी सती हुई। 1200 से 1600 के बीच राजस्थान मे सती होने के 20 उदाहरण प्राप्त होते है। परंतु ये अधिकांश क्षत्रिय परिवारों के है। मध्य प्रदेश के महाकौशल क्षेत्र मे सती स्तंभ से पता चलता है कि बुनकरों, नाइयों व शिल्पियों मे 1500 से 1800 के बीच सती हुई थी।[6]

सल्तनत युग मे स्त्रियों की दशा के अंतर्गत सती प्रथा उल्लेख करना आवश्यक है, क्योकि कानून के अनुसार इसे अभी कुछ समय पूर्व ही बंद किया है, जो पत्नी अपने पति की मृत्यु के पश्चात उसके साथ ही चिता मे जल जाती है, उसे सती कहते है। यह प्रथा उच्च वर्ग के हिन्दुओं एवं मुख्यतया राजपूतों मे प्रचलित थी। यह प्रथा प्राचीन काल से ही प्रचलित थी। स्त्री अपने पति के साथ दो प्रकार से सती हो सकती थी जिसे निम्न प्रकार से विर्णत किया जा सकता है–

1. सहमरण या सहगमन
2. अनुमरण या प्रतीक मरण

1. सहमरण

जिस पत्नी को पति का मृतक षरीर उपलब्ध हो जाता था। वह उसी के साथ जल जाती थी। उसे सहमरण अर्थात पति के साथ जल जाना कहते थे। इसको कभी–कभी सहगमन भी कहते थे।

2. अनुमरण

अनुमरण मे स्त्री अपने पति की किसी वस्तु के साथ जलती थी। उदाहरण के लिए, यदि कोई स्त्री गर्भवती होती थी। तो वह पुत्र उत्पन्न करने के पष्चात अपने पति की वस्तु के साथ जल जाती थी। इसको अनुमरण भी कहा जाता है। यदि किसी राजा के एक से अधिक पत्नियां होती थी तो पटरानी पति के साथ जलती थी। तथा षेश पृथक अग्नि मे जलती थी। यदि कोई स्त्री सती नही होती थी। तो यह समझा जाता था कि उसका चरित्र भ्रश्ट है।

इब्नबतूता ने अपनी पुस्तक ''रहला–ए–इब्नबतूता'' मे एक स्त्री के सती होने का वर्णन निम्न प्रकार से किया है–

''अपने पति की मृत्यु के समाचार सुनकर पत्नी ने सर्वप्रथम स्नान किया इसके पश्चात वह अपने शरीर पर बहुमूल्य वस्त्र एवं जवाहरात धारण करके सती होने के स्थान पर गई। ब्राम्हण तथा अन्य संबंधी भी उसके साथ थे जो एक छायादारी वृक्ष के नीचे संगीत के साथ यह जुलूस प्रारंभ हुआ था। सती होने के स्थान पर पानी का एक तालाब था और वही पर एक पत्थर की प्रतिमा थी। तालाब के पास ही विषाल अग्नि प्रज्जवलित हो रही थी। छायादार वृक्षों की आड़ मे सती ने स्नान किया तथा अपने बहुमूल्य वस्त्र एक एक करके अग्नि को भेंट किए। इसके पश्चात उसने एक लंबी चादर सी अपने शरीर पर डाली और अग्नि की प्रार्थना करके उसमे प्रवष्टि हो गई। इसी समय वाद्य यंत्र बजने लगे। अन्य लोगों ने जलती स्त्री पर भारी लकड़ियां रख दिये ताकि वह भाग न सके।'' इब्नबतूता इस दृश्य को देखकर बेहोश हो गया और इसका आगामी वर्णन हमको प्राप्त नही होता है।[7]

शिशुवध

एक अन्य क्रूर प्रथा थी जो विशेषतः बंगालियों और राजपूतों मे प्रचलित थी वह थी बालिका शिशुओं को एक महान आर्थिक भार मानकर उनकी शैशव काल मे हत्या करना। दहेज के भार से डरकर अथवा किन्ही अन्य कारणों से कन्याओं का विवाह न करने की स्थिति मे समाज तथा धार्मिक दृष्टि से भी वे पाप के भागी बनते थे।

इस प्रकार शिशुओं को मादक पदार्थ देकर अथवा भूखा रखकर उनकी हत्या कर दी जाती थी। महाराजा रणजीतसिंह के पुत्र दिलीप सिंह ने उल्लेख किया है ''उसने स्वयं अपने नेत्रों के सामने देखा कि उसकी अपनी बहनों को बोरी मे बंद करके नदी मे फेंक दिया गया।''[8]

सती प्रथा का प्रोत्साहन

सती प्रथा को प्रोत्साहन देने का श्रेय हिन्दू जाति एवं उसमे प्रचलित मान्यताओं को है जहां विधवा को हीन दृष्टि से देखा जाता था। इसलिए स्त्रियां यह सोचती थी कि संपूर्ण जीवन पशुवत नारकीय दशा मे व्यतीत करने की अपेक्षा जल जाना ही श्रेष्ट है। यह जनता एवं उस समय का धार्मिक विचार था कि स्त्री का प्रमुख कर्तव्य सती होना है। एक विधवा का अपने पति के साथ सती न होना उसके लिए ही नही वरन उसके परिवार के सदस्यों के लिए भी अपमान व शर्म की बात थी। निकोलो कोन्टी के अनुसार यदि स्त्री सती नही होती थी तो उनके पति की संपत्ति उसके बच्चों के स्थान पर अन्य रिश्तेदार को दे दी जाती थी।

अबुल फजल ने स्त्रियों के सती होने के निम्न कारण बताया है–

1. वे स्त्रियां जो अपने संबंधियों द्वारा सती होने पर बाध्य की जाती थी।
2. जो अपने मृत पति से इतना प्रेम करती थी। कि उसका साथ किसी भी दशा मे नही छोड़ सकती थी।
3. जनता की दृष्टि मे अपना तथा अपने परिवार के सदस्यों का सम्मान रखने के लिए सती हो जाती थी।
4. अनेक परिवार के रीति रिवाजो के कारण सती होती थी।
5. अपनी इच्छा के विरूद्ध अग्नि मे फेंक दी जाती थी।

निष्कर्ष

सती प्रथा रोकने के लिए सल्तनत युग मे भी प्रयत्न हुए। इब्नबतूता के अनुसार जब कोई स्त्री सती होना चाहती थी तो उसे उसके परिवार के सदस्य को दिल्ली के सुल्तान से आज्ञा पत्र लेना पड़ता था। अर्थात सुल्तान इस प्रथा के विरूद्ध होते थे। अतः अपनी इच्छा के विरूद्ध कोई स्त्री सती नही हो सकती थी। बगैर ठोस कारण बताए अनुमति नही दी जाती थी। परंतु सुल्तान को तर्को के आधार पर आज्ञा पत्र देना ही पड़ता था।

इस तरह भारत वर्ष मे यह प्रथा प्राचीन काल से आधुनिक काल तक प्रचलित थी, जिसने इतिहास मे महिलाओं की स्थिति को सदैव चर्चित रखा।

यह प्रथा राजपूत जाति मे मध्यकाल मे इस्लाम के आक्रमण के समय प्रचलित हुई थी। राजपूत स्त्रियों को जब यह आशा नही रहती थी कि उनके पतियों को लड़ाई मे विजय प्राप्त होगी तो वे अपने सतीत्व की रक्षा के लिए अग्नि जलाकर सामूहिक रूप से अपने प्राणों की आहूति दे देती थी। यही जौहर प्रथा कहलाती थी। राजपूत युद्ध भूमि मे चले जाते थे जहां से जिंदा लौट पाना असंभव लगता था, ऐसी दशा मे उनकी स्त्रियां जौहर करती थी।

सल्तनत युग मे भी जौहर के अनेक उदाहरण हमे मिलते है। रणथंभौर के चौहान लड़ाकू हमीरदेव का उदाहरण सर्वविदित है। अलाउद्दीन की सेना का बहुत समय तक सामना करने के पश्चात उसने जौहर करवाया। इब्नबतूता अपनी पुस्तक रिहैला मे जौहर का सजीव वर्णन देता है।

राजविद्रोही वहा–उद्–दीन गुशस्प को शरण देने के कारण मुहम्मद तुगलक ने कम्पिला के राजा पर आक्रमण किया। जब राजा ने देखा कि विजय की कोई संभावना नही है तो उसने शरणार्थी राजा को सुरक्षित स्थान पर पहुंचाया। इसके बाद उनके वहां की समस्त स्त्रियां अग्नि मे जल गयी एवं पुरूष मृत्य होने तक युद्ध करते रहे और स्वयं को खत्म कर दिये।[9]

सन्दर्भ

1. खरे, एस.एल. – भारतीय इतिहास में नारी पेज 22।
2. शर्मा चन्द्रयागा – भारतीय नारी परिवर्तन एवं चुनौतिया पेज 44, 45।
3. खरे,. एस.एल. – भारतीय इतिहास में नारी पेज 74, 75।
4. खरे, एस.एल. – भारतीय इतिहास में नारी पेज 26, 96, 97।
5. शर्मा डॉ. श्रीमती कमलेष – भारतीय नारी परिवर्तन एवं चुनौतियां पेज 64, 65।
6. खरे, एस.एल. – भारतीय इतिहास में नारी पेज 66–68।
7. खरे, एस.एल. – भारतीय इतिहास में नारी पेज 69–70।
8. ग्रोवर बी.एल. एवं मेहता अलका – आधुनिक भारत का इतिहास, पेज 281।
9. खरे, एस.एल. – भारतीय इतिहास में नारी, पेज 70–71।